महिला–शिक्षा का अतीत

❑ डॉ. शिवदत्त पाण्डेय

भारत में स्त्री शिक्षा के वर्तमान से शायद ही कोई प्रबुद्ध नागरिक संतुष्ट हो । लेकिन वर्तमान की तद्‌विषयक दरिद्रता के कारणों की छानबीन के लिए हम अतीत का आकलन करने से अक्सर कतराते हैं । ऐसा प्रसंग हो तो हम संदर्भ को मध्यकाल के अंधेरे में ले जाते हैं । गौरवशाली क्लासिकल युग में स्त्री शिक्षा के प्रमाण बहुत ज्यादा नहीं हैं । लेकिन स्रोतों की न्यूनता के चलते उस समय की स्थिति को बेहतर मान भी लें तो हमें इस कारण पर विचार करना चाहिये कि आखिर बाद में शास्त्रों ने ही स्त्री शिक्षा को क्यों निषिद्ध घोषित कर दिया । यह आलेख 'टुडे एंड टुमारो' फीचर सेवा से उपलब्ध हुआ है ।

वैदिक युग भारतीय सभ्यता का उषाकाल और नारी इतिहास का स्वर्ण युग माना जाता है जिसमें कई विदुषी महिलाओं का प्रादुर्भाव हुआ था। इनका नाम भारतीय दर्शन के इतिहास में अंकित है । जहां एक ओर महर्षि अभि के परिवार की बह्मवादिनी विश्वास मंत्रद्रष्टा के रूप में विख्यात थी वहीं ऋषि कक्षीवान की पुत्री घोषा ऋगवेद में दो मंडलों तथा अगस्त्य की पत्नी लोपमुद्रा कई ऋचाओं की प्रणेता थी । राजा असंग की पत्नी रानी शाश्वती तथा बह्मवादिनी कपाला उस युग की विख्यात दार्शनिक थीं। इन्द्र की पत्नी स्वनाम धन्य मन्त्रद्रष्टा के रूप में सामने आती हैं । इनके अतिरिक्त एक अन्य विदुषी महिला सिकता निवावरी ने एक मण्डल की दस ऋचाओं का प्रणयन किया था । कोषीतकि ब्राह्मण में पत्थावत्सि नाम की एक महिला का उल्लेख मिलता है जिसे अध्ययन समाप्ति के पश्चात वाक्‌ (विदुषी) की उपाधि से विभूषित किया गया था। गन्धर्व-गृहीता नाम की एक और महिला का उल्लेख है जिसने ज्ञान की एक विशेष शाखा (विशेष विद्या) में पाण्डित्य प्राप्त किया था।

इसी प्रकार वृहदारण्यक उपनिषद में भी नारी शिक्षा के कई प्रसंग आये हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उस युग में भी ज्ञान के क्षेत्र में कुछ महिलाओं का विशिष्ट स्थान था । उदाहरणार्थ मिथिला के स्वनाम धन्य दार्शनिक याज्ञवलक्य की पत्नी मैत्रेयी अपने युग के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिकों में एक थी । मृत्यु उपरान्त आत्मा की स्थिति जैसी गहन दार्शनिक समस्या पर अपने पति के साथ उसके जो तर्क वितर्क वृहदारण्यक उपनिषद में दिए गए हैं वास्तव में वही भारतीय दर्शन के आत्म सिद्धांत की आधार शिला है । राजा जनक के दरबार में यज्ञ के अवसर पर हुई दार्शनिक गोष्ठी में भाग लेने वाले दार्शनिकों में गात्री वाचक्नवी का नाम आज भी आदर के साथ लिया जाता है । आश्वलायन श्रौता सूत्र (1:2) के अनुसार धार्मिक कार्यों में कुछ मन्त्र पतू के द्वारा ही उच्चरित किए जाते थे। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक हिन्दू परिवार की महिलाओं के लिए कुछ खास मन्त्रों का अध्ययन आवश्यक था अन्यथा वे यज्ञादि में सम्मिलित नहीं हो सकती थी । (डॉ. उपेन्द्र ठाकुर, साहित्य और संस्कृति : कुछ चिंतन पृ. 14-15) एवं स्पष्ट है कि वैदिक युग में विद्या अर्थात शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं का स्थान लगभग पुरुषों के समान ही था । पतंजलि प्रणीत महाभाष्य में कुछ ऐसी महिलाओं का उल्लेख है जो मीमांसाशास्त्र में निष्पात थीं। मीमांसाशास्त्र का प्रणयन भी काशकृस्नी नामक एक महिला ने ही किया था। 'अमरकोश' में विद्वतापूर्ण वक्तृता देने वाली महिलाएं उपाध्याय की संज्ञा से विभूषित की गई हैं । 'महाभारत' में तो कौशल्या, तारा, शिवा, वृहन्नला नामक विदुषियों का सादर उल्लेख हुआ है। 'भागवत पुराण' में भी दाक्षायण की दार्शनिक पुत्रियों का उल्लेख हुआ है । 'अर्थशास्त्र' में कौटिल्य ने महिला धनुर्धरों की चर्चा की है । इसी प्रकार काव्य तथा नाटक ग्रंथों में कुछ महिलाओं की चर्चा की गई है जो शिक्षा के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान रखती थीं। महाकवि कालिदास कृत 'शाकुन्तलम' में अपने प्रेमी दुष्यन्त को शकुन्तला द्वारा लिखित प्रेम-पत्र का उल्लेख है जो काव्य की दृष्टि से उच्च कोटि का माना जाता है। प्रभा देवी सभी कलाओं में दक्ष थीं और अवन्ति सुन्दरी ने काव्य शास्त्र पर उच्च कोटि का ग्रन्थ लिखा था। और तो और शंकराचार्य के समय (दशमी शताब्दी) में भी मनीषियों की भूमि मिथिला में प्रख्यात दार्शनिक मंडन मिश्र की पत्नी सरस्वती जैसी विदुषी पैदा हुई थी जिसने उस युग के दो शीर्षस्थ दार्शनिकों (शंकर तथा मंडन) के बीच हुए ऐतिहासिक शास्त्रार्थ की मध्यस्थता न्यायाधीश के रूप में की थी। मित्र मिश्र कृत वीर मित्रोदय में कहा गया है कि पूर्व काल में महिलाओं की दो श्रेणियां होती थीं । (1) ब्रह्मवादिनी जो शिक्षोपरांत विवाह योग्य होने पर विवाह कर ग्रार्हस्थ्य जीवन बिताती थी । (2) यम स्मृति में कहा गया है कि महिलाएं दीक्षा प्राप्त करने के बाद ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश करती थीं तथा अपने पिता चाचा अथवा भ्राता के संरक्षण में शिक्षा प्राप्त करती थीं । (डॉ. उपेन्द्र नाथ, साहित्य एवं संस्कृति : कुछ चिंतन पृ. 16) उपर्युक्त तथ्यों के अवलोकन से स्पष्ट है कि वैदिक युग को प्रारंभ से पुरुष तथा नारी की शिक्षा में कोई अन्तर नहीं था। यद्यपि उत्तर वैदिक काल में उन्हें

पुरुषों की भांति वैदिक साहित्य के अध्ययन की स्वतंत्रता नहीं थी। किंतु स्त्रियों को सामान्य शिक्षा प्राप्त करने की स्वतंत्रता थी । दशम शताब्दी तक स्त्री शिक्षा सामान्य गति से चलती रही ।

तदनन्तर परदा-प्रथा एवं बाल-विवाह के बढ़ते प्रभाव एवं तत्कालीन शासन व्यवस्था के कदाचार के कारण नारी शिक्षा को इतना बडा धक्का लगा कि उन्नीसवीं शताब्दी तक में लोग लड़कियों को पढ़ने के लिए स्कूल भेजना नहीं चाहते थे और लड़कियों की शिक्षा की सीमा भी छठे दर्जे तक ही परिसीमित हो गई थी । दादा भाई नोरौजी की प्रेरणा से 1848 में बम्बई में जब एक बालिका विद्यालय की स्थापना हुई तो कई अभिभावक भय से लड़कियों को स्कूल भेजने के लिए तैयार नहीं हुए । बहुत समझाने बुझाने पर कुछ अभिभावक इस शर्त पर लड़कियों को स्कूल भेजने के लिए राजी हुए कि उन्हें अंग्रेजी नहीं पढ़ाई जायेगी । स्कूल के संस्थापक पहले तो राजी हो गये पर धीरे धीरे वे उन्हें अंग्रेजी भी पढ़ाने लगे । जब लोगों को यह मालूम हुआ कि स्कूल में लड़कियों को अंग्रेजी भी पढ़ाई जाती है तो उन्होंने उसका विरोध करते हुए बहुत लड़कियों का स्कूल जाना बंद कर दिया । एक गुजराती समाचार पत्र 'चाबुक' ने तो 1852 में अंग्रेजी शिक्षा के विरुद्ध जेहाद छेड़ते हुए लोगों को चेतावनी तक दे डाली कि अंग्रेजी पढ़ी लड़कियां अपने पतियों का जीवन नरक बना देंगी । पर शिक्षा की प्रगति रूकी नहीं । प्रगतिवादी विचारधारा के लोग लड़कियों को स्कूल भेजते रहे किन्तु छठे दर्जे तक ही पढ़ने की उच्चतम सीमा बहुत दिनों तक रही । उच्च शिक्षा के लिए 1875 ई. तक सोचा भी नही गया कि कोई लडकी भी विश्वविद्यालय की परीक्षा देगी।



1875 ई. में प्रथम बार एक पारसी सज्जन साराबजी खरसेट जी ने बम्बई विश्वविद्यालय को एक पत्र लिखकर जानना चाहा कि क्या उनकी लड़की पिरोज बम्बई विश्वविद्यालय की मैट्रिकुलेशन परीक्षा में बैठ सकती है ? विश्वविद्यालय के लिए इस तरह का पत्र अप्रत्याशित था । बम्बई विश्वविद्यालय ने यह कहते हुए कि विश्वविद्यालय में इस तरह का कोई प्रावधान नही है, पिरोज को परीक्षा में बैठने की अनुमति नहीं दी । पर प्रश्न तो उठ ही गया था इसलिए बम्बई विश्वविद्यालय ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से एतद संबंधी जानकारी मांगी । कलकत्ता विश्वविद्यालय का उत्तर था कि अभी तक किसी महिला ने परीक्षा में बैठने की अनुमति नहीं मांगी है और न भविष्य में ऐसी आशा है । किंतु उसी वर्ष अर्थात 1875 में चन्द्रमुखी बसु नामक एक लड़की ने मैट्रिक की परीक्षा में बैठने की अनुमति कलकत्ता विश्वविद्यालय से मांगी । हालांकि उस समय उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की गई । फिर भी लड़की ने अपने परिजनों के सहयोग से संघर्ष जारी रखा और अन्तत: 1877 ई. में इस अन्याय और विभेदकारी नीति को समाप्त करते हुए कलकत्ता विश्वविद्यालय ने चन्द्रमुखी बसु को मैट्रिक की परीक्षा में बैठने की अनुमति दी । इसी संघर्ष के फलस्वरूप 1878 ई. से सभी परीक्षाओं में लड़कियों को बैठने के लिए स्थायी अनुमति मिल गई ।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के इस निर्णय से प्रभावित होकर बंबई विश्वविद्यालय ने भी अपने एतद विषयक नियमों में इस प्रकार संशोधन किया कि तद्विषयक प्रयोजनों के लिए He के अन्तर्गत She भी सम्मिलित है । पश्चिमी भारत में भी इस प्रकार लड़कियों के लिए उच्च शिक्षा का द्वार सदा के लिए खुल गया। 1883 में चन्द्रमुखी बसु कलकत्ता विश्वविद्यालय से भारत की प्रथम महिला स्नातक (ग्रेज्युएट) हुई और कोरनेलिया सोराबजी बम्बई विश्वविद्यालय से प्रथम महिला स्नातक हुई । इस प्रकार भारत में सदियों से बंद उच्च शिक्षा का द्वार महिलाओं के लिए फिर से खुल पाया । उच्च शिक्षा में महिलाओं के प्रवेश का सिलसिला अत्यंत मंथर गति से आगे बढ़ता रहा जो अब जाकर कुछ गतिशील हो सका है ।◆